वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में संत साहित्य की प्रासंगिकता

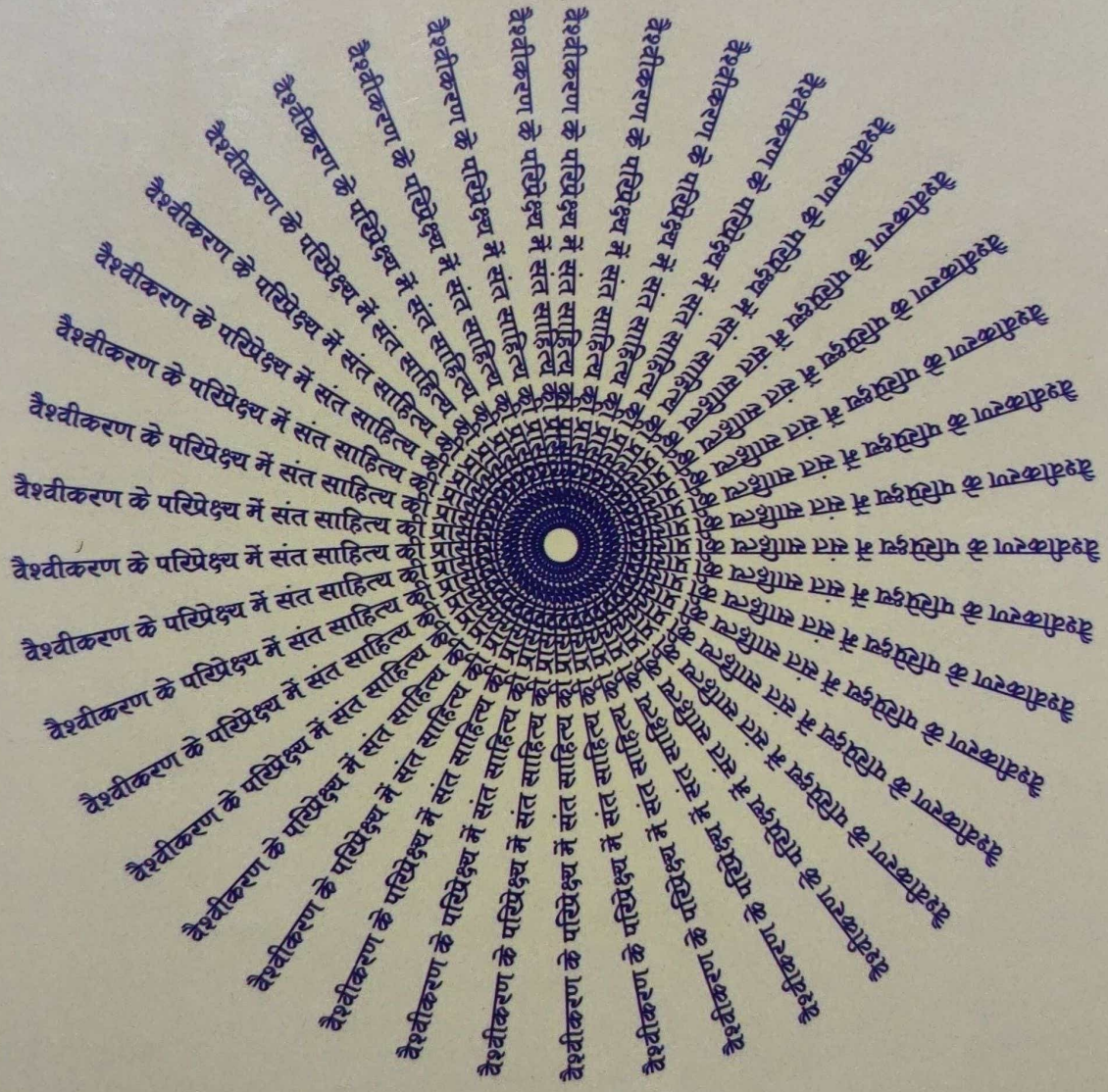

सम्पादक
डॉ. अपर्णा पाटील
डॉ. विजयकुमार वैराटे
डॉ. मजीद शेख
प्रा. अर्जुन मोरे

ISBN : 978-93-80760-52-0

मूल्य : ₹ 1195/-

पुस्तक : वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में संत साहित्य की प्रासंगिकता

सम्पादक : डॉ. अपर्णा पाटील, डॉ. विजयकुमार वैराटे
डॉ. मजीद शेख, प्रा. अर्जुन मोरे

© : सम्पादक

संस्करण : 2017 ई.

प्रकाशक : अतुल प्रकाशन
57 पी, कुंज विहार II
यशोदा नगर, कानपुर-208011

सम्पर्क : 0512-2633004

ई-मेल : atulprakashan@gmail.com

शब्द सज्जा : विष्णु ग्राफिक्स, कानपुर

मुद्रक : पूजा प्रिण्टर्स, कानपुर

Vaishwikaran Ke Pariprekshya Me Sant Sahitya Ke Prasangikta

Ed. by : Dr. A. Patil, Dr. V. Vairate, Dr. M. Shaikh, Prof. A. More

Price : Rs. One Thousand One Hundred Ninety Five Only

37 मध्यकालीन संत दादूदयाल के काव्य की वैश्विक प्रासंगिकता 218
डॉ. ज्ञानेश्वर गंगाधर गाडे

38 वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में संत रोहल फकीर की प्रासंगिकता 223
डॉ. पी. व्ही. महालिंगे

39 संत चोखामेला की कविता में विट्ठल भक्ति 227
डॉ. सुरेश माधवराव मुंढे

40 वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में संत नामदेव के साहित्य की प्रासंगिकता 232
डॉ. द्वारका गिते–मुंड

41 वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में जायसी काव्य की प्रासंगिकता 236
डॉ. बबन चौरे

42 वर्तमान परिप्रेक्ष्य में संत कल्याण देव जी का योगदान 240
डॉ. कविता सिंह

43 आधुनिकता के संदर्भ में मीराबाई 245
वन्दना शर्मा

44 मीराबाई के काव्य में व्यक्त विद्रोह 248
डॉ. अलका एन. गडकरी

45 संत कबीर और संत सेवालाल की विचारधारा 252
डॉ. विनोद श्री. जाधव

46 वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में जायसी के प्रेमभावना की प्रासंगिकता 257
डॉ. मजीद शेख

47 वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में संत कवि निपट निरंजन की प्रासंगिकता 265
डॉ. मीरा निचळे

48 संत तुकाराम के साहित्य की प्रासंगिकता 271
डॉ. संतोष विजय येरावार

48

संत तुकाराम के साहित्य की प्रासंगिकता

– डॉ. संतोष विजय येरावार

वैश्वकरण ने आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आयाम से मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं का सकारात्मक एवं नकारात्मक रूप में प्रभावित किया हैं। वैश्वीकरण के कारण जहा संस्कृतियों का अदान–प्रदान होंगा वही भारतीय संस्कृति के उदात्त मूल्यों को हानी भी हो सकती हैं। संस्कृतियों में बिखराव एवं विकृतियों की परिस्थिति निर्माण हो रही हैं। धर्म, साहित्य, मानवीय मूल्य, कला, पारिवारिक परिवेश, सभ्यता, रहन–सहन, रीति– रिवाज आदि सभी में वैश्वीकरण ने क्रुर रूप से आहत किया हैं। धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक शोषन, दिखाऊ–बिकाऊ मानवीयता एवं संवेदनशीलता, शालीनता, का विकृतीकरण, नशा–खोरी, चरित्रहीनता, चोरी, लुट–पाट, पाखंड, अमानवीयता, स्पर्धा से निर्माण नीचता, एवं मानवों का मशिनीकरण, यह वैश्वीकरण की देन हैं। मानवीय एवं सामाजिक मुद्यो के पतन के इस दौर में मानव को मानव बनाने की क्षमता, समाज को सही दिशा देने का सामर्थ्य भारतीय संत साहित्य में है। संत तुकाराम का काव्य आज भी प्रासंगिक हैं। वर्तमान में मनुष्य का भौतिक सुखसाधनों की प्रति कामना एवं लालसा, जनसंचार माध्यमों का विकृत प्रभाव, बुरे का अनुकरण करने की प्रवृत्ति, वासना तृप्ति की अभिलाषा तथा अमीर बनने की लालसा नें मनुष्य को नैतिक दृष्टि से पतित, खोखला, विक्षिप्त एवं हिंसक बना दिया है। हत्या, बलात्कार, चोरी, भ्रष्टाचार, अनादरभाव, लुट खसोट, धोख–धडी, पाखंड, पैसों के लिए माता–पिता एवं भाइयों का वध, माता–पिता का तिरस्कार, नशा खोरी, आडंबर आदि दिन ब दिन बढ रहे हैं। ऐसे माहौल में आज संत साहित्य के विचारों की आवश्यकता समाज को हैं। संत तुकाराम का साहित्य नैतिक एवं सामाजिक दृष्टि से अत्यंत सशक्त और प्रासंगिक हैं। संत तुकाराम में अपने काव्य में समाज में विकृतियों एवं विडबनांओं की कडी आलोचना की संत तुकाराम की धारणा है कि, समाज में सुख–शांति बरकरार रखनी हैं तो नैतिकता के साथ मनुष्य को अपना व्यवहार करना चाहिए, सचआचरण को प्रधानता देनी चाहिए। रामराज्य में सुख–शांति इसलिए थी, उस युग में नैतिकता के साथ व्यवहार किया जाता था।

वे नीति तत्व है, प्रेमभाव, अहिंसा, सत्य, सत्संगति, परोपकार, सदाचार, अपरिग्रह, पवित्रता, निंदा, त्याग, कोध, विसर्जन, दया, क्षमा, दान स्वावलंबन और इंद्रिय संयम आदि। तत्कालीन युग में इन तत्वो का अभाव होने के कारण उन्होंने अपने युगीन समाज के लोगों को सही रास्ते पर लाने के लिए साहित्य को माध्यम बनाया विभिन्न उदाहरण देकर नैतिक दृष्टि से सशक्त बनाने हेतु नसीहत दी है जो आज भी प्रासंगिक हैं।

धन संचय की लालसा ने मनुष्य को पतित एवं घृनित बना दिया हैं। भ्रष्टाचार, पाखंड, लुट–खसोट, धोखा–धडी इसी मानसिकता की देन है। वे कहते है–

'द्रव्यचिया मागें कळिकाळाचा लाग।
म्हणोंनिया संग खोटा त्याचा।[1]

अर्थात धन द्रव्य के पीछे लगे हुए मनुष्य का रंग झूठा होता है। मनुष्य को धन का मोह या लालसा मन में रखना उसके लिए घातक है। उनका कहना है कि मनुष्य ने ईश्वर रूपी धन का संग्रह करना चाहिए जो निरंतर टिकने वाला होता है जो अंतिम क्षण में हमारे काम आ सकता है। तुकाराम ने धन संचय करनेवाले तथा लालसा रखनेवाले मनुष्य को समझाते हुए कहा है कि– "कितना भी धन या पैसा कमाने पर भी वह हमारे साथ नही आ सकता है। मरणोपरान्त वह यहीं पर रह जाता है। यह सब मालूम होते हुए भी मनुष्य धन कमाने की लालसा मन में रखते हुए उसका संचय करने में ही स्वयं की भलाई समझता है"[2]– हे मनुष्य अगर तू स्वयं की भलाई करना चाहता है तो धन संचय करने के बजाय ईश्वर का नामस्मरण कर उसका ही नाम तुम्हारे कंठ में धर, क्योंकि वहीं तुम्हारे साथ आने वाला है। शेष सभी चीजें यहीं पर रहने वाली हैं।

आज भी मनुष्य के मन में धन कमाने की लालसा यथावत बनी हुई है। आज का मनुष्य बुध हुआ तब भी उसकी धन के प्रति लालसा कम होती हुई नहीं दिखाई देती। वह केवल मरने के बाद ही कम हो जाती है। इसलिए तुकाराम ने मानव मन के सिद्धांत को पहचानकर उसे ईश्वर भक्ति रूपी धन के साथ जोडने का प्रयास किया है परंतु आज तक मनुष्य ईश्वरी धन के पीछे न दौडते हुए भौतिक धन के पीछे दौड रहा है।

भारतीय समाज में जिसके पास धन, पैसा या अन्य मूल्यवान चीजें उपलब्ध हैं उसे समाज में प्रतिष्ठित समझा जाता है। समाज में एक कहावत प्रसिद्ध है कि 'गधे का बेटा होना परंतु पैसे वाला होना' इसके अनुरूप लोग धन कमाने के दीवाने बन गये थे। तुकाराम का मानना है कि, धन–द्रव्य के द्वारा प्राप्त प्रतिष्ठा नश्वर होती है। वे अपने समाज का चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते है–

'धनवंतालागी। सर्वमान्यता आहे जगी,
मता, पिता बंधु जन। सर्व मानिती वचन
तुका म्हणे धन भाग्य आशाश्वत जाण।[3]

अर्थात – जिसके पास धन–द्रव्य है उसे समाज में प्रतिष्ठा मिलती है, माता पिता, भाई–बहन सभी लोग उसका वचन मानते हैं। तुकाराम के अनुसार धन के आधार पर मिला हुआ भाग्य क्षणिक होता है।

तुकाराम कालीन समाज में अनेक लोग धन–संपत्ति को संग्रहीत करके समाज में कीर्ति प्राप्त करने के पीछे लगे हुए थे। ये लोग ईश्वर का नामस्मरण भूलकर धन कमाने की धुन में स्वयं का गला स्वयं ही कापने के लिए तुले हुए थे। ऐसे लोगों की लालसा का विरोध करते हुए तुकाराम कहते हैं–

'धन मेळकानि कोटी। सवे नये रे लंगोटी
पाने खाशील उंदड। अंती जासी सुकल्या तोंडी
पलंग न्याहाल्या सुपनी। शेवटी गोवऱ्या संगति
तुका म्हणे राम। एक विसरता श्रम।'[4]

अर्थात – करोडों रूपये का धन प्राप्त करने से तुम्हारे साथ लंगोटी भी नही आने वाली। अब अधिक पान खाकर मुह रंगाता है परंतु मरने के पश्चात सूखे मुह से शमशान में जाना पडेगा। अब पलंग पर सुखपूर्ण गद्दी पर सोता है परंतु अंत में सुखे गोबर के साथ सोना पडेगा। स्वार्थ को अधिक महत्व देने के बजाय परमार्थ को महत्व देना हैं। मूल्य के पश्चात्य आपका कार्य ही लोगों के मन में जीवित रहता हैं। धन संचय मनुष्य को वास्तविक जीवन से दूर ले जाता हैं। सेवा, दया, दान, ही मनुष्य कों मनुष्य बनाते हैं।

यह सफल जीवन का रहस्य प्रकट करने वाले तुकाराम स्वयं इसके विरूद्ध आचरण किस प्रकार करते हैं ? उन्होंने पारिवारिक कर्तव्यों को पूरा करते हुए अपना अधिक समय ईश्वर के चिंतन–मनन में व्यतीत किया। पारिवारिक संतोष के लिए पर्याप्त धन की आवश्यकता होती है यह सभी जानते हैं परंतु उसकी मर्यादा कितनी हो ओर उसका विनिमय कैसे किया जाये इसे न जानने के कारण सुख प्राप्ति करा देने वाला धनही असंतोष का प्रमुख कारण बन जायेगा और न केवल पारिवारिक बल्कि सामाजिक वर्ग संघर्ष को जन्म देकर पूरे समाज का मन स्वास्थ बिगाड सकता है। धन के प्रति अतिरिक्त ममता ही मनुष्य को अंधा बना देती है इसीलिए सत्कार्य में उस धन का विनियोग मन की प्रसन्नता बढा देता है।

वर्तमान युग में मनुष्य की धन–संचय करने की लालसा प्रतिदिन बढती ही जा रही है। तुकाराम युगीन समाज में भी लोग धन–संचय के पीछे दौडते थे आज भी उसी क्रम में दौडते हैं। आज का मनुष्य माता–पिता, रिश्ते–नातों को भूलकर केवल धन कमाने के पीछे लगा हुआ है। उसके लिए धनही सर्वस्व बन गया है। तत्कालीन युग के समान तुकाराम का काव्य आज की घड़ी में भी प्रासंगिक है। डॉ. निर्मलकुमार फडकुले के अनुसार "बाहय संपत्ति की अपेक्षा मानसिक और आत्मिक संपत्ति मनुष्य को प्राप्त करनी चाहिए यह उनकी

विचारात्मक भूमिका वर्तमान युगीन लोगों के लिए अधिक मार्गदर्शक है। सत्ता और संपत्ति के पीछे आज के और भविष्य कें लोगों को तुकाराम के विचार पल–पल पर मार्गदर्शन करने वाले है।'

भारतीय वर्णव्यवस्था की वजह से समाज में जातीयता का प्राबल्य निर्माण हुआ। इसमें मनुष्य की श्रेष्ठता जाति के आधार पर तय करना समाज की प्रमुख विशेषता बन गई थी। वैदिक मंत्रों को पढने का अधिकार शूद्रों को नहीं था। नामस्मरण का अधिकार भी शूद्रों को जो मिला था, वह संभवतः परिस्थितियों का परिणाम था, ब्राह्मणों की उदारता नहीं। तुकाराम ने अपने समय की जाति–व्यवस्था की निरर्थकता को स्पष्ट करते हुए कहा है कि, जब भिन्न व्यक्तियों की देहयश्टि की संरचना में कोई विविधता और अंतर नहीं है क्योंकि सबके हाड मास एक ही हें, समान है, तब ऊँच–नीच, छोटा–बडा, शुध्द–अशुध्द, स्पृश्य–अस्पृश्य का भेद किस लिए?जैसे–

'शुद्ध–शुद्ध निवडे कैसे, चर्म मांस भिन्न नाहीं।[5]

तुकाराम भक्ति साधन में जाति को महत्वपूर्ण न मानकर गुण को ही अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। उनका मानना है कि 'ब्राह्मण को समाज में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, परंतु उनके पास सच्चा ब्राह्मण्य नहीं है।' जैसे–

'वेश वंद्या पुरते। कोण ब्राम्हण निरूते।।[6]

तुकाराम ने ब्राह्मणों के भक्तिहीन जीवन की अपेक्षा चमार जाति के भक्तों की सराहना करते हुए ब्राह्मणों की ढोंगी प्रवृत्ति पर कडा प्रहार किया है। जैसे–

'जो हे दूशि हरिची कथा। त्यासि क्षयरोग व्यथा।।
याति वर्ण श्रेष्ठ। परितो चांडाळ पापिष्ठ।।[7]

इस प्रकार तत्कालीन समाज में ब्राह्मण अगर कर्मभ्रष्ट हो जाता है तो वहीं त्रिलोक में उसे श्रेष्ठ माना जाता था। जैसे–

'जरी तो ब्राम्हण झाला कर्मभ्रष्ठ। तुका म्हणे श्रेश्ठ तीही लोकी।।

तुकाराम की दृष्टि से वही जाति श्रेष्ठ है, जो सांसारिक मोह, माया से दूर रहकर जल्द–से–जल्द इससे अपना छुटकारा कर ईश्वर की साधना में एक चित्त हो जाती है।

तुकाराम ने वर्ण–श्रेष्ठत्व, जन्मसिद्ध और जातिश्रेष्ठत्व के आधार पर विशेशाधिकार और वेदांती ग्रंथों का अर्थ लगाने का अधिकार आदि अनेक बरतावों से उन्होंने ब्राह्मणों का विरोध किया है।[8] ईश्वर भक्ति में जाति से कुछ भी लेना–देना नहीं होता है, जिसके मुख में भगवान का नाम है उसे ही यहा सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। तुकाराम कहते भी हैं – 'जो शुद्ध जाति के हैं अर्थात परमार्थ की दृष्टि से उन्हें किसी भी बात की चिंता करने की जरूरत नहीं है, क्योंकि, वह अपने

स्वाभाविक गुणों से स्वयं को तथा दुसरे को भी कृतार्थ करता है। एक स्थान पर वे कहते हैं–

'तुका म्हंणे मी नवजे याती वरी
पूज्यमान करी वैश्णवासी।[9]

अतः हम कह सकते हैं कि, तुकाराम को वर्ण और जाति–कुल पर आधारित समाज व्यवस्था अमान्य थी। वे कर्मानुसार श्रेष्ठ–कनिष्ठ भाव के पक्ष में थे। वे मूलतः एकता और समरसता का पुरस्कार करने वाले थे। दया, क्षमा, शांति, शुचिता आदि सदगुणों से मनुष्य की श्रेष्ठता निर्धारित की जाती है, जन्म से नहीं या जाति–कुल से नहीं, यह उनका सिद्धांत था।

तत्कालीन तुकाराम के विचारों को वर्तमान युगीन समाज के लोगों के आचरण के साथ तादात्म्य स्थापित किये जाने पर लक्षित होता है कि, वर्तमान समय में भी जाति–व्यवस्था का वृक्ष कम होने के बजाय अधिक बढ रहा है। आज एक ही जाति के अंतर्गत अनेक उपजातिया निर्माण हो गई हैं। इसमें रोटी व्यवहार चलता है बेटी नहीं। आज भी ब्राह्मणों को उतना ही श्रेष्ठ मानाजाता है जो तत्कालीन युग में माना जाता था। आज ब्राह्मण जो भी कहता है उन्हीं के अनुरूप समाज के अन्य वर्ग के लोग कार्य करते हैं। आज किसी शुभ कार्य के लिए ब्राह्मणों को लाया जाता है, उनके अभाव में पूजा विधि का आरंभ नहीं होता। पूजा विधि में अछूतपन न आये। आज भी देहातों मे निम्नवर्गीय लोगों के घर का भोजन करके 'अनाज सीधा' के रूप में ग्रहण करता है। मेरा यह मन्तव्य है कि, क्या उस अछूतों के घर के अनाज से ब्राह्मण अछूत नहीं हो पाता?

भारत के सभी धर्म–ग्रंथों में हिंसा की निंदा और अहिंसा का परम समर्थक है। तुकाराम की दृष्टि में किसी भी प्राणी को पीडित करना अथवा उसे सताना पाप है।[10] सभी संतों की दृष्टि से सर्पादि के साथ अन्य प्राणिमात्र को भी नहीं मारना चाहिए, क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापी है अतः उसमें भी ईश्वर का अंश विद्यमान है। मत्सर भाव का त्याग ही सच्ची ईश्वर पूजा है। इसी पूजा के बल पर मानव सुखी हो सकता है।[11]

मध्ययुगीन भारत पर मुसलमानों का शासन था। सभी मुसलमान प्राणियों की हत्या करते हुए उनका मांस सेवन करते थे। इससे देखकर तुकाराम उनकी कडी निंदा करते हुए वे कहते हैं–

'मांस खाता हाउस करी। जोडोनि वैरी ठेवियेला
कोण त्याची करील कींव। जीवे जीव नेणता।[12]

अर्थात जो मनुष्य पशुओं की हत्या करके उनका मांस खाता है वह मनुष्य दुश्मनी निर्माण करता है, एक जीव दूसरे जीव की कदर नहीं करता ऐसे लोगों की दया, माया कौन करेगा? ईश्वर का निवास सभी प्राणिमात्र में विद्यमान है। बधिक को देखते ही जो शिशु चिल्लाता है, रंभाता है, उसी को मारने के लिए हाथ

न जाने कैसे उठ जाता है?तुका की दृष्टि में ऐसा मनुष्य चांडाल है उसे नरक में जाकर कष्ट भोगने पडेंगे जैसे–

'जीवे–जीव नेणे पापी सारिखाची। नळी दूजयाची कापु बैसे
आत्मा नारायण सर्वा घटी आहे। पशुमध्ये काय कळो नये
तुका म्हणे तया चांडाळाशी नर्क। भोगिती अनेक महाःदुख।

आज हर गाँव–गाँव और शहरों में मांसाहार के दुकान और होटल लगे हुए हैं। आज का मनुष्य बकरे को काटते समय बकरा चिल्लाता है परंतु उसे कतिपय उसकी दया नहीं आती। मनुष्य अपना पेट भरने के लिए दूसरों की जान लेता है। आज प्राणी–मात्र के साथ–साथ एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की जान ले रहा है। तुकाराम के साथ महात्मा गाधी ने भी अहिंसा का मंत्र आज के लोगों को दिया था। परंतु उन्ही के साथ भी वही हादसा हुआ। जिसका वे विरोध करते थे। अतः तुकाराम ने आज के परिवेश की हिंसा को दखकर उसकी निंदा करते हुए लोगों को अहिंसा का मूल मंत्र दिया है।

मानव जीवन में सत्य का अनन्य साधारण महत्व है। सत्याचरण के माध्यम से ईश्वर की प्राप्ति संभव है। तत्कालीन समाज में भी झूठ बोलने वालों की संख्या बडी मात्रा में थी। इसे देखते हुए तुकाराम ने सत्यता का आचरण करने की नसीहत दी है।

तुकाराम ने समस्त लाभों की प्राप्ति सिद्ध होने, विवाह समापन परोपकार करने के लिए भी असत्य भाषण वर्जित माना है। सत्य के माध्यम से किया हुआ व्यवहार सुख–शांति भरा होता है। वे कहते हैं–

'सत्य सत्ये देते फळ। नाही लागताची बळ।[14]

अर्थात सत्य का आचरण हमेशा सत्य फलश्रुति का प्राप्ति करवाता है, उसके लिए अन्य शक्ति का इस्तेमाल करने की आवश्यकता नहीं है। संत तुकाराम सत्य के प्रति आस्था और असत्य के प्रति तिरस्कार का भाव व्यक्त करते हैं। वे मनुष्य को सत्याचरण का संदेश हमेशा देते रहे हैं। जैसे–

'सत्य कर्मे आचर रे। बापा सत्य कर्म आचरे रे
सत्य कर्मे आचरे रे होईल हित। वरिल दुख असत्याचे।[15]

तुकाराम कालीन समाज के समान आज भी अधिकतर मनुष्य असत्य का सहारा लेते हुए व्यवहार करते हैं। आज सत्य बोलने वालों की मात्रा दिन–ब–दिन कम हो रही है। परंतु सत्य यह सोने के समान होता है जो मिट्टी या राख में रखने से भी उसका रंग बदलता नहीं। आज राजनीति में असत्य का ही अधिक सहारा लिया जाता है। आज की राजनीतिक गतिविधियों में तुकाराम का काव्य अधिक प्रासंगिक बना हुआ है।

तुकाराम ने अपने युगीन समाज को देखते हुए संगति का असर मनुष्य पर तुरंत किस प्रकार होता है। यह अपने काव्य के माध्यम से बताया है। मनुष्य

जिस व्यक्ति के साथ रहता है उसी के गुण–अवगुणों का असर उसके ऊपर होता है। उनके अनुसार सत्संगति से सुख की उत्पत्ति होती है तथा कुसंगति से दुःख उत्पन्न हो ता है। इसे स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं–

'अग्निमाजी गेले। अग्नी होऊन तेच ठेले
लेह लागी परिसा अंगी। तो ही भूषण जाला जगी।[16]

अर्थात जो मनुष्य अग्नि में गिरता है वह अग्निमय हो जाता है तथा जिसे लोहे को पारस का स्पर्श हो जाता है वह विश्व में भूषण बन जाता है। अर्थात जिस प्रकार की संगति मनुष्य को लगती है उसी प्रकार का बर्ताव मनुष्य करने लगता है। सज्जनों की संगति कल्याणकारी होती है इसीलिए मनुष्य को सत्संग स्वयं ढूढना पडता है। सत्संगी मनुष्य को पहचानने के लिए कठिनता नहीं आती जैसे–

'चंदन चंदनपणे। सहजगुणे संपन्न
वेधालिया धन्य जाति। भाग्य होती सन्मुख।'[17]

अर्थात–चंदन अपने स्वाभाविक गुणों से संपन्न होता है। जब अन्य वृक्ष चंदन के पास उगते हैं तब वे स्वयं भाग्यवान होते हैं, क्योंकि उन्हें चंदन के जैसे गुण प्राप्त हो जाते हैं। आज के मनुष्य में भी संगति के अनुरूप गुण–दोष देखने को मिल जाते हैं। शराब पीने वाले का संग करने से संग करने वाला भी शराबी हो जाता है। अतः सत्संगति करते समय चंदन के गुणों जैसे व्यक्तियों का संग करना चाहिए जो हमेशा सुगंध देता रहेगा।

संत तुकाराम परोपकार को सबसे बडा पुण्य कर्म मानते हैं। उनके अनुसार परोपकार करते समय पात्र–अपात्र का विचार करना व्यर्थ है। मेघ बरसते समय यह नहीं देखते कि, अमुक भूमि उपजाऊ है या अनुपजाऊ, वह दोनों को समान रूप से सिंचित करता है। गंगा का पवित्र पानी उत्तम और अधमका विचार किये बिना सबकी प्यास बुझाता है। जैसे–

'नाही विचारीत। मेघ हागणदारी सेत
नये पाहो त्याचा अंत। ठेवी कारणाचे चित्त
वर्जीत गंगा। नाही उत्तम अधम जगा।[18]

तत्कालीन समाज के लोगों में भी परोपकार करने की वृत्ति नहीं रही थी। तुकाराम ने आखो देखी बात अपने काव्य में उतारकर लोगों को ईश्वर प्राप्ति का मार्गपरोपकार बताया है। वे कहते हैं–

'उपकारी असे आरोणि उरला
आपुले तयाला पर नाही।[19]

अर्थात जो मनुष्य परोपकारी होता है, वह दूसरों पर एहसान करने के लिए तत्पर रहता है, वह अपने–पराये का भेद नहीं मानता। संत तुकाराम संतों को परोपकारी मानते हैं क्योंकि संतों को ही पीडित मनुष्य का दुःख–दरिद्रता

असहायसी लगती है। उनके अंतःकरण में हमेशा दयाभाव संचित होता है। वे कहते है–

'तुका म्हणे तरी सज्जनाची कीर्ति
पुरवावी आर्ति दुर्बळाची।'

अर्थात–संतों की परोपकार की कीर्ति दुर्बलों की इच्छा पूर्ति करती है। वर्तमान युगीन समाज में भी तत्कालीन समय के लोगों के समान परोपकार करनेवालों की संख्या कम होती जा रही है। परंतु आज का मनुष्य यह नहीं जानता कि, परोपकार भी ईश्वर प्राप्ति का एक मार्ग है जो तुकाराम ने अपने काव्य के माध्यम से बताया है।

जिस वस्तु पर दूसरों का अधिकार है और उसकी अनुमति के बिना उसका लेना चोरी कहलाता है। चोरी न करना अस्तेय है। तुकाराम के मतानुसार धन, संपत्ति, वस्त्रादि स्थूल पदार्थो की ही चोरी नहीं बल्कि विचारों तक की भी चोरी नही होनी चाहिए।

तत्कालीन समाज में चोरी करने वालों की संख्या बडी तादाद में बढ गई थी। तुकाराम दृष्टान्त देते हुए कहते हैं–

चोरटे सुने मारिले टाळे। केऊ करी परि न संडी चाळे।[20]

अर्थात चोरी करके रोटी खाने वाले कुत्ते के माथे पर मारने पर भी वह चोरी करना छोडता नहीं। उसी तरह चोरी करने वाले मनुष्य को मार–पीट करने से भी उसके स्वभाव में बदलाव आता नहीं। संत तुकाराम ने भौतिक वस्तुओं की चोरी करने वालों के साथ–साथ विचारों की चोरी करने वाले की भी निंदा की है।

सज्जनों द्वारा जीवन में क्रियात्मक रूप से धारण किया हुआ आचार सदाचार कहलाता है। तुकाराम की दृष्टि से सत्य पालन करने वाला, प्राणिमात्र को ईश्वर का अंश मानकर उन पर अनुग्रह करनेवाला, पर दुख को अपना दुःख समझने वाला व्यक्ति संत है। ऐसे व्यक्तियों का हृदय अंदर–बाहर से कोमल होता है। वह आगे बढकर निराश्रित को हृदयसे लगाता है और अपने सेवकों पर पुत्रवत दया भाव रखता है। इस प्रकार का व्यक्ति ईश्वर का मूर्तिमान रूप है। जैसे–

'जे का रंजले गांजले। त्यासी म्हणे जो आपुले।।
तेचि साधु ओळखावा। देव तेथेची जाणावा।।
मृद सबाहय नवनीत। तैसे सज्जानाचे चित्त।।
ज्यासी आपंगिता नाही। त्यासि धरी जो हृदयी।।
दया करणे जे पुत्रासी। तोच दासा आणि दासी।।
तुका म्हणें सांगु किती। त्याचि भगवंताच्या मूर्ति।।[21]

सदाचारी पुरूष सबके साथ समन्वय करते हुए नेक आचरण करता है। वह किसी के साथ भेद–भाव नहीं करता। तुकाराम मानव मात्र के लिए सदाचार का मार्ग प्रशस्त करते हुए कहते हैं–

'इतुले करी भलत्यापरी। परद्रव्य पर नारी। सांडुनि अभिलाशा अंतरी
वर्ते वेव्हारी सुखरूप। न करी दंभाया सायास। शांत राहे बहुवस।[22]

अर्थात सांसारिक सुख का भोग करते हुए, परद्रव्य, परनारी की कामना को मन से पूर्णतः निष्कासित कर दो, अपने व्यवहार में दम्भ के प्रवेश को रोको, शांत भाव धारण करो। लोग ईश्वर की पूजा–अर्चना करते समय बाह्याचार करते हैं परंतु उसमें सदाचार नहीं होता। तुकाराम के मतानुसार ईश्वर की पूजा का अर्थ धूप, दीप और नैवेद्य न होकर स्वामी हेतु अपना सर्वस्व अर्पित कर देना, श्रद्धा भाव से गुरू की भक्ति, पिता के वचनों का पालन एवं पति की निष्ठाभाव से सेवा, सत्य कथन और दूसरों के दुःख दर्द को अपना दुःख समझना यही विष्णु या ईश्वर की महापूजा है।

तत्कालीन युग के समान आज का मनुष्य भी सदाचार से दूर रहा है। आज का मनुष्य काम वासना से भरा–पूरा हैवह अपनी बेटी, भौजाई के साथ भी कुकृत्य करता हुआ दिखाई देता है। आज के रिश्ते–नातों में बिखरता रूप दिखाई देता है। आज की भागदौड में मनुष्य मनुष्यत्व का आचरण भूल–सा गया है। अतः तुकाराम की अपने अभंग में कही हुई बात आज भी प्रासंगिक है।

अनावश्यक वस्तु के ग्रहण का त्याग करना ही अपरिग्रह है। वर्तमान युगीन मनुष्य पैसा और विभिन्न वस्तुओं के ग्रहण या संचय में लगा हुआ है। आज मनुष्य ईमानदारी से धन न कमाकर बेइमानी से कमा रहा है, भ्रष्टाचार ही शिष्टाचार की बात करते हुए उसी के अनुरूप आचरण कर रहा है। तुकाराम का मानना है कि, धन प्राप्त करते समय सच्चाई के साथ करना चाहिए। जैसे–

'जोडोनिया धन उत्तम वेव्हारे। उदास विचारे वेच करी।[23]

अर्थात धर्म–नीती के अनुरूप प्रामाणिकता के साथ व्यवहार करते हुए जो मनुष्य धन कमाता है वही मनुष्य गतिशील बन सकता है।

तुकाराम ने अपने काव्य में स्वानुभवों की अभिव्यक्ति की है। तत्कालीन समाज में लोग एक–दूसरे की निंदा किया करते थे। संत तुकाराम ने निंदा करने वालों को दुर्जन की कोटि में रखा है। उनकी दृष्टि में निंदक मनुष्य अपने कुल के माथे पर कलंक है। वे कहते हैं–

**'संत निंदा आवडे ज्यासी। तो जिताची नर्कवासी।
तुका म्हणे नश्ट। जाणा गाध्व तो स्पष्ट।**[24]

अर्थात– जिस मनुष्य को निंदा करने की आदत है। वह जीते जी नरक यातना में चला जाता है। उन्होंने निंदकों को परोपकारी जीव मानते हुए उनकी महत्ता का वर्णन भी अनेक अभंगों में किया है। जैसे–

'निंदक तो परउपकारी। काय वर्णू त्याची थोरी।'[25]

समाज में अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के लोगों का निवास होता है। दुष्ट लोग समाज के अन्य लोगों की निंदा करते हैं। हमारे अंतर्गत गुण–दोषों का

विवरण वे निंदा के द्वारा करके, हमारे अंतर्मन में संचित मैल जो साबुन द्वारा नहीं निकाला जा सकता वह निंदकों द्वारा निकाला जाता है। जिस प्रकार मछली पानी में रहते हुए पानी को पवित्र बनाती है उसी प्रकार निंदक समाज के लोगों की अशुद्धता दूर कराता है। तुकाराम कहते है–

'असो खळ ऐसे फार। आम्हां त्याचे उपकार
करिती पातकांची धुणी। मोल न घेता साबणी।[26]

अर्थात निंदकों के हमारे ऊपर बहुत ही उपकार होते हैं क्योंकि वे पैसे और साबुन न लेते हुए भी हमारा पाप धोते हैं। वे हमारा बोझ वहन करने वाले 'फोकट केक मजदूर' हैं।

तत्कालीन युग से भी अधिक मात्रा वर्तमान युग में निंदकों की देखी जाती है। वे एकाध व्यक्ति के कमजोरी को पकडकर उसकी निंदा करते हुए उसे पवित्र बनाते हैं। अतः तुकाराम युग का दृश्य आज भी देखने को मिल जाता है। जिससे तुकाराम का काव्य आज भी प्रासंगिक है।

दूसरों का दुःख देखकर दुःखी होना ओर दुःखी मनुष्य की सहायता करना ही दया भाव है। 'तुकाराम ने सभी भूत–मात्राओं का रक्षण और दुष्टों को शिक्षा करना ही दयाभाव माना है।'[27]

ईश्वर का निवास अन्यत्र कहीं न होकर दया, क्षमा, शांति का भाव जहा होता है वहीं पर ईश्वर का निवास होता है। जैसे–

'दया क्षमा शांति। तेथे देवाचि वसति।[28]

अर्थात जिसके पास दया भाव है उसके पास ईश्वर स्वयं चला आता है। आज के मनुष्य में दया भाव खोया हुआ नजर आता है। आज के मनुष्य के रग–रग में निर्दयता भरी हुई है उसे निकालने के लिए उन्हें तुकाराम के विचारों को ग्रहण करने की आवश्यकता है।

संत तुकाराम की दृष्टि में व्यक्ति एवं समाज का शांतिपूर्ण जीवन केवल क्षमा के बल पर ही संभव है। एक स्थान पर वे कहते हैं–

'मत्सराचा ठाव शरीरी नसावा। लोभेविण जीव दुःख देतो
तुका म्हणे राहे अंतर शीतळ। शांतिचे ते बळ क्षमा अंगी।[29]

अर्थात– इस देह से ईष्या– द्वेष को निष्कासित कर देना चाहिए क्योंकि इससे किसी भी प्रकार का लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। मन में शांति भाव का निर्माण तभी संभव है जब हम क्षमा वृत्ति को धारण कर सकेंगे। अर्थात उन्होंने मनुष्य में संचित क्षमा भाव सभी सुखों का भण्डार माना है। उनका मानना है कि, जिस स्थान पर तृण नही है, वहा दावाग्नि स्वयं शांत हो जाती है। अतः जिस व्यक्ति के पास दया, क्षमा, शांति का भाव होता है उस व्यक्ति में ईश्वर का निवास तुकाराम मानते हैं।

एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को कोई मूल्यवान वस्तु मुफ्त में देने की क्रिया को दान कहा जाता हैं महाभारत में कर्ण को दानवीर कहा जाता था। संत तुकाराम इस मत के पोषक हैं कि, अन्नदान करते हुए देश–काल तथा पात्र विचार अनपेक्षित है परंतु द्रव्य दान करते समय पात्र–अपात्र का विचार करना अनिवार्य है। दान करते समय निसंकोच मन से दान करना चाहिए। जिस मनुष्य का हाथ दान–धरम करते समय कापता है और दान धरम करने की सलाह वह दूसरों को देता है वह बुरा मनुष्य होता है। तुकाराम के अनुसार वह व्यक्ति परोपकार नहीं कर सकता। जैसे–

'दान कापे हाथ। नावडे तेविशी मात।[31]

भारतीय संस्कृति में दान करनेवाला सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति माना जाता है दान करने से पुण्य की प्राप्ति हो जाती है। तुकाराम भी निसंकोच दान देने के पक्ष में हैं–

'अंतर्भूता द्यावे दान। खरे पुण्य त्या नावे।'

आज भी दान देने वालों की संख्या अधिक है परंतु जो भी दान दिया जाता है वह दीन–हीन लोगों को नहीं बल्कि सशक्त ब्राह्मणों को दिया जाता है। आज विवाह के अवसर पर, श्राद्ध विधि के अवसर पर तथा सत्यनारायण की पूजा के अवसर पर ब्राह्मणों को दान दिया जाता है। परंतु मेरे मतानुसार तुकाराम ने जो पात्र–पात्र की जो बात कही है उसी के अनुरूप आज दान देना चाहिए।

संत तुकाराम ने ईश्वर की भक्ति–साधना में आत्मसंयम तथा चित्तशुद्धि पर विशेष बल दिया है। मनुष्य की इंद्रिया विषय–वासना का प्रवेश द्वार है। इसी मार्ग से विषय रूपी चोर के दुर्ग पर आक्रमण करते है तुकाराम को अपने मन के सामर्थ्य पर पूरा विश्वास नहीं, इसलिए वे प्रभु विठ्ठल से अपने हृदय में व्याप्त होने की प्रार्थना करते हैं क्योंकि, विषय रूपी भूत अंदर ना आये। वे कहत हैं–

'निरोधितो परि न मोडे विकार।
बहु ही दुस्तर विषय द्वारे
राहते ति तुम्ही भरोनि अंतरी।
होतो तदाकरी निर्विशयची।[32]

तुकाराम की दृष्टि में इंद्रिय–संयम के बिना ईश्वर का नामस्मरण बाहयाचार मात्र है। इंद्रिय पर संयम न करने वाले मनुष्य का 'रामनाम' उच्चारण ठीक वैसे ही है जैसे भोजन के साथ मक्खी निगल जाना। जैसे–

'इंद्रियासी नेम नाही। सुखी राम म्हणोंनि काई
जेवी मासीसवे अन्न। मुख ने दी ते भोजन[33]

आज अनेक साधु लोगों का इंद्रियो पर संयम न होने के कारण बलात्कार जैसे कुकृत्य उनकी ओर से किया जाता है। अतः वे ईश्वर की भक्त के नाम पर कलंक होते हैं। ऐसे साधुओं के लिए तुकाराम का काव्य मार्गदर्शक और प्रासंगिक है।

सारांशतः उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि, आज मानवीय जीवनमें नीति मूल्य की नितांत आवश्यकता है। वर्तमान युगीन समाज में उसका दिन–ब–दिन–ह्रास होता जा रहा है। आज मनुष्य के भीतर से प्रेमभाव समाप्त हो गया है। स्वार्थ में आज का मनुष्य अंधा हो गया है। बुद्धिपक्ष बाह्य पक्ष पर पूरी तरह हावी है। आज समाज में छल–कपट और बाह्याडम्बर अधिक है। आज अहिंसा का स्थान हिंसा ने लिया है इसमें प्राणि मात्र के साथ–साथ मनुष्यों की कत्लें हो रही हैं। आज आतंकवाद की वजह से सारा विश्व परेशान है और स्वयं को उससे बचने की कोशिश कर रहा है। इसमें आम आदमी का जीना मुश्किल सा हो गया है। उसे इस काल में घुटन–सी महसूस हो रही है। आज मनुष्य स्वार्थी होने के कारण भारतीय संस्कृति के परोपकार तत्व को भूल–सा गया है। मनुष्य को सत्संगति के लिए समय लग रहा है। परंतु कुसंगति का असर तुरंत ही हो रहा है।

आज अल्प बोलने वाला मनुष्य पापी कहलाता है, क्योंकि सत्य के लिए लेशमात्र भी स्थान नहीं है। इसका असर राजनीति में अधिक मात्रा में देखने को मिल जाता है। आज के मनुष्य के सामने पैसा सर्वस्व बन चुका है। वह पैसों के लिए खून, खराबा या चोरी कर रहा है और धन संचय करने की उसकी लालसा बढ गई है। आज के मनुष्य ने स्वार्थ का सहारा लेकर जीवन के स्वाभाविक आनंद से मुह फेर लिया। आज के आधुनिक युगीन समाज में ईश्वर, धर्म के संबंध में बहुत कुछ कहा–सुना जाता है मगर आज मनुष्य ने ईश्वर का नामस्मरण करना छोड दिया है। आज के मनुष्य को इंद्रियों पर संयम रखना कठिन–सा हो गया है, आज का मनुष्य ईश्वर की भक्ति केवल बाह्याचार के लिए कर रहा है उसका अंतरमन वासनाओं से भरा पूरा है। इसीलिए ऐसे समाज में तुकाराम जैसे संतों के विचारों की नितांत आवश्यकता है। आज के मनुष्य में उपरोक्त नीतिमूल्यों को संचित करने के लिए संत तुकाराम के काव्य ग्रहण करके उसके अनुरूप करने की आवश्यकता है। संत तुकाराम का काव्य नीति मूल्यों से भरा हुआ सागर है। तत्कालीन समाज के लोगों को नीति मूल्य की उन्होंने जो नसीहत दी है वह आज की घडी में भी प्रासंगिक है।

संदर्भ सूची

1. सं.डॉ.गोपालराव बेणारे –सार्थ श्री तुकारामाची अभंग गाथा, अभंग. क्र.508–पृ.126
2. वही अभंग क्र. 1888 – पृ.412
3. वही अभंग क्र. 2130 – पृ.461
4. वही अभंग क्र. 2959 – पृ.625
5. वही अभंग क्र. 2597– पृ.553
6. तुकारामाची अभंग गाथा अभंग क.– 1346
7. वही अभंग क्र. 349

8. सपकाले प्रा. प्रकाश – तुकारामाच्या कवितेतील प्रबोधन, अभंग क्र. 1234
9. डॉ.ज्ञानेश्वरगाडे – संत कबीर और तुकाराम के काव्य में प्रासंगिकता – पृ.165
10. सं.डॉ.गोपालराव बेणारे – सार्थ श्री तुकारामाची अभंग गाथा, अभंग. क्र. 2995–पृ.699
11. वही अभंग क्र. 2873 – पृ. 608
12. वही अभंग क्र. 2532 – पृ. 540
13. वही अभंग क्र. 3190– पृ. 671–672
14. वही अभंग क्र. 1021– पृ. 232
15. वही अभंग क्र. 685– पृ. 163
16. वही अभंग क्र. 1360 – पृ. 308
17. वही अभंग क्र. 1893 – पृ. 412–13
18. वही अभंग क्र. 3390 – पृ. 720
19. वही अभंग क्र. 825 – पृ. 190–191
20. वही अभंग क्र. 620 – पृ. 149
21. वही अभंग क्र. 4114– पृ.66
22. वही अभंग क्र. 4114 – पृ. 943
23. वही अभंग क्र. 2085– पृ. 442
24. वही अभंग क्र. 1030– पृ. 233–34
25. डॉ. ज्ञानेश्वर गाडे–संत कबीर और तुकाराम के काव्य में प्रासंगिकता, पृ. 203
26. सं.डॉ.गोपालराव बेणारे –श्री तुकारामाची अभंग गाथा, अभंग. क्र. 1122–पृ. 253
27. वही अभंग क्र. 620 – पृ. 149
28. वही अभंग क्र. 880 – पृ.201
29. डॉ. श्रीमती रमेश सेठ –तुकाराम एवं कबीर – एक तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 83
30. सं.डॉ.गोपालराव बेणारे – सार्थ श्री तुकारामाची अभंग गाथा, अभंग. क्र.880–पृ. 201
31. वही अभंग क्र. 59 – पृ. 37
32. वही अभंग क्र. 2878 – पृ. 609
33. वही अभंग क्र. 3181 – पृ. 669

●